Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 18, Issue No. 2, March–2021, (Special Issue), ISSN 2230-7540

समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण चिंता: मंगलेश डबराल की कविताओं के विशेष संदर्भ में

Dr. Ramayan Ram*

Assistant Professor (Hindi), Government Women Post Graduate College, Kandhla, Shamli

सार - ***पर्यावरण संरक्षण वर्तमान समय के विमर्शों का एक मुख्य विचारणीय बिंदु है। समाज विज्ञानों, तकनीक -विज्ञान, दर्शन से जुड़े लगभग सभी अकादमिक विमर्श तक इसकी व्याप्ति हो चुकी है। मानव जीवन से जुड़े सभी अनुशासनों मे यह चिंता मुख्य हो गई है कि हमें सबसे पहले पृथ्वी को बचाना है अन्यथा मानव ज्ञान व विज्ञान की समस्त उपलब्धियों का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा।***

साहित्य और कला भी इस चिंता से मुक्त नहीं है। हिंदी साहित्य में आज विविध विमर्श चल रहे हैं। दलित, स्त्री आदिवासी विमर्शों जैसे महा आख्यानिक विमर्श के अतिरिक्त आज पर्यावरण की चिंता भी साहित्य के केंद्र मे आती जा रही है।

----------X----------

प्रस्तावना

प्रकृति का मनोरम रूप हमेशा से ही कवियों को प्रिय रहा है। कविता से प्रकृति का संबंध मां और पुत्री के संबंध की तरह है। हर युग मे प्रकृति के विराट व मनोराम रूप ने कवियों को उद्दीप्त किया है। संस्कृत के महाकाव्यों मे कालिदास से लेकर बाणभट्ट तक, हिंदी मे कबीर, सूर, तुलसी जायसी से लेकर आधुनिक काल मे प्रसाद, पंत, निराला से लेकर केदारनाथ अग्रवाल, नागर्जुन तक सभी कालजयी कवियों ने प्रकृति के बहुविध मनोरम, जीवनदायी व नवोन्मेषशाली रूप का अंकन किया है।

लेकिन उत्तर आधुनिक युग मे भूमंडलिकरण व अबाध लूट व मुनाफे पर आधारित उपभोक्तावाद ने जिस तेजी के साथ इस प्रकृति का विनाश किया है वह पूर्ववर्ती कवियों ने सोचा भी नहीं होगा। इसलिए समकालीन हिंदी कविता जो बाजारवादी - उपभोक्तावादी संस्कृति का मुखर विरोध करती है, इसी में वह पर्यावरण संकट पर चिंता जाहिर करते हुए पृथ्वी को बचाने का आहवान करती है।

इस संदर्भ में कवि स्वर्गीय मंगलेश डबराल की कविताएं अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। मंगलेश डबराल का बचपन पहाड़ों में बीता था। वे टिहरी गढ़वाल के काफलपानी गांव के रहने वाले थे। उन्होंने पहाड़ों की हिम आच्छादित सौंदर्य को देखा था इसलिए विकास के नाम पर पहाड़ों की दुर्दशा को अपनी व्यक्तिगत स्मृतियों की क्षति के रूप में देखते हैं। अपनी कविता 'यहां थी वह नदी' में वे लिखते हैं -

"हमे याद है

यहां थी वह नदी इसी रेत में

जहां हमारे चेहरे हिलते थे

यहां थी वह नाव इंतजार करती हुई

अब वहां कुछ नहीं है

सिर्फ रात को जब लोग नींद में होते हैं

कभी-कभी एक आवाज सुनाई देती है रेत सी"[1]

एक नदी के सूख कर रेत हो जाने की त्रासदी को ये पंक्तियां बहुत ही मार्मिक तरीके से व्यक्त करती हैं। मंगलेश जी पर्यावरण के संकट को प्रकृति व मनुष्यता के संकट के समतुल्य रखकर समझते हैं। पूंजीवादी संस्कृति जो वैश्वीकरण के नाम पर स्थानीयता को नष्ट कर रही है, लोक संस्कृति को ग्लोबल सांस्कृतिक के नाम पर समाप्त कर रही है। ऐसे में प्रकृति को बचाने के लिए कवि हमारी लोक संस्कृति व

प्राकृतिक जीवन शैली को अपनाने की बात करता है। अपनी कविता 'घटती हुई ऑक्सीजन' में वे लिखते हैं -

"अक्सर पढ़ने में आता है

दुनिया में ऑक्सीजन कम हो रही है

कभी ऐन सामने दिखाई दे जाता है कि वह कितनी तेजी से घट रही है

रास्तों पर चलता हूं खाना खाता हूं पढ़ता हूं सोकर उठता हूं

तो एक लंबी जमुहाई आती है

जैसे ही किसी बंद वातानुकूलित जगह में बैठता हूं

उबासी एक झोंका भीतर से बाहर आता है

एक ताकतवर आदमी के पास जाता हूं

तो तत्काल ऑक्सीजन की जरूरत महसूस होती है

बढ़ रहे हैं नाइटोजन सल्फर कार्बन के ऑक्सीजन

और हवा में झूलते अजनबी और चमकदार कण

बढ़ रही है घृणा दमन प्रतिशोध और कुछ चालू किस्म की खुशियां"[2]

ये पंक्तियां उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण उत्पन्न हो रहे पर्यावरण संकट की ओर इंगित करती हैं।

इस शोध पत्र में मंगलेश डबराल के अतिरिक्त समकालीन कविता मे सक्रिय उन कवियों की कविताओं की पड़ताल की गई है जिन्होंने भूमंडलीकरण के बाद बढ़ते पर्यावरण संकट को अपनी रचनाओं के केंद्र मे रखा है। यह शोध पत्र पर्यावरण की चिंताओं को केंद्र मे रखकर रची गई कविताओं और कवियों को दृष्टिगत रखते हुए लिखा गया है।

मंगलेश डबराल पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को आधुनिक विकास की अवधारणा के अंतर्विरोधों के रूप मे समझने की कोशिश करते हैं। नगरीकरण व आधुनिक जीवन शैली की उपभोक्तावादी प्रवृत्ति ने प्रकृति का सर्वाधिक विनाश किया है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के साथ बड़ी बड़ी कंपनियों ने जंगलों पहाड़ों और नदियों जैसे प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करना प्रारंभ किया। जंगलों व पहाड़ों पर कब्जे के लिए वहाँ हजारों सालों से निवास कर रहे आदिवासियों को विस्थापित करने का अभियान चलाया गया। इस प्रयास का आदिवासियों ने प्रतिवाद भी किया। आदिवासियों की जीवन शैली वनों और प्रकृति के साथ सह अस्तित्व पर आधारित है। वे वनों पर निर्भर रहते हैं साथ ही उनका संरक्षण भी करते हैं। पर्यावरण की रक्षा उनके लिए सहज जीवन शैली का अंग है। मंगलेश डबराल जी अपनी कविता 'आदिवासी' में इस प्रक्रिया को इस प्रकार दर्ज करते हैं-

"सिर्फ नदियां नहीं उनके वाद्ययंत्र हैं

मुरिया बैगा संथाल मुंडा उरांव डोंगरिया कोंध पहाड़िया

महज नाम नहीं वे राग हैं जिन्हें वह प्राचीन समय से गाता आया है

और यह गहरा अरण्य उसका अध्यात्म नहीं उसका घर है

कुछ समय पहले तक वह अपनी तस्वीरों में

एक चैड़ी और उन्मुक्त हंसी हंसता था

उसकी देह नृत्य की भंगिमाओं के सहारे टिकी रहती थी

एक युवक एक युवती एक दूसरे की ओर इस तरह देखते थे

जैसे वे जीवन भर इसी तरह एक दूसरे की ओर देखते रहेंगे

युवती बालों में एक फूल खोंसे हुए

युवक के सर पर बंधी हुई एक बांसुरी जो अपने आप बजती हुई लगती थी

अब क्षितिज पर बार-बार उसकी काली देह उभरती है

वह कभी उदास और कभी डरा हुआ दिखता है

उसके आसपास पेड़ बिना पत्तों के हैं और मिट्टी बिना घास की

यह साफ है कि उससे कुछ छीन लिया गया है

उसे अपने अरण्य से दूर ले जाया जा रहा है अपने लोहे कोयले और अभ्रक से दूर

घास की ढलानों से तपती हुई चट्टानों की ओर

सात सौ साल पुराने हरसूद से एक नये और बियाबान हरसूद की ओर

पानी से भरी हुई टिहरी से नयी टिहरी की ओर जहां पानी खत्म हो चुका है

वह कैमरे की तरफ गुस्से से देखता है

और अपने अमर्ष का एक आदिम गीत गाता है

उसने किसी तरह एक बांसुरी और एक तुरही बचा ली है

एक फूल एक मांदर एक धनुष बचा लिया है

अखबारी रिपोर्टें बताती हैं कि जो लोग उस पर शासन करते हैं

देश के 626 में से 230 जिलों में

उनका उससे मनुष्यों जैसा कोई सरोकार नहीं रह गया है

उन्हें सिर्फ उसके पैरों तले की जमीन में दबी हुई

सोने की एक नयी चिड़िया दिखाई देती है

एक दिन वह अपने वाद्ययंत्रों को पुकारता है अपनी नदियों जगहों और नामों को

अपने लोहे कोयले और अभ्रक को बुला लाता है

अपने मांदर तुरही और बांसुरी को जोरों से बजाने लगता है

तब जो लोग उस पर शासन करते हैं

वे तुरंत अपनी बंदूक निकाल कर ले आते हैं।"[3]

पहाड़ों की स्मृतियां मंगलेश जी की कविता में विभिन्न रूप मे आती हैं। आधुनिक विकास के मॉडल ने हिमालयी क्षेत्र के पहाड़ों व उत्तराखंड जैसे पर्वतीय राज्य के पर्यावरण को बहुत अधिक प्रभावित किया है। जल विद्युत परियोजनाओं के लिए नदियों पर बांधों का निर्माण और पहाड़ के ढलान पर वनों के निर्बाध कटाव ने भूस्खलन को बढ़ावा दिया है साथ ही तापमान के बढ़ने के कारण ग्लेशियरों के पिघलने की परिघटना सामने आती है। इसी कारण जोशीमठ जैसी त्रासदी घटित होती है। पहाड़ों के जीवन सौंदर्य को याद करते हुए वे लिखते हैं-

"इन ढलानों पर वसंत आएगा

हमारी स्मृति में

ठंड से मरी हुई इच्छाओं को

फिर से जीवित करता

धीमे-धीमे धुँधुवाता खाली कोटरों में

घाटी की घास फैलती रहेगी रात को

ढलानों से मुसाफिर की तरह

गुजरता रहेगा अँधकार

चारों ओर पत्थरों में दबा हुआ मुख

फिर से उभरेगा झाँकेगा कभी

किसी दरार से अचानक

पिघल जाएगा जैसे बीते साल की बर्फ

शिखरों से टूटते आएँगे फूल

अंतहीन आलिंगनों के बीच एक आवाज

छटपटाती रहेगी

चिड़िया की तरह लहूलुहान"[4]

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि हिंदी कविता की परंपरा मे प्रकृति जहाँ अपने सुंदरतम रूप में उपस्थित रही है। वहीं समकालीन कविता में पर्यावरण को बचाने की चिंता प्रमुख है। आज की कविता प्रकृति के मनोरम रूप की स्मृतियों को संजोते हुए प्रकृति के विनाश के कारणों की पड़ताल करती है। मंगलेश डबराल समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण की चिंता को प्रमुख रूप से अभिव्यक्त करते हैं।

संदर्भ

1. 'यहां थी वह नदी' मंगलेश डबराल, मंगलेश डबराल सेतु समग्र, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ संख्या 51

2. घटती हुई ऑक्सीजन, मंगलेश डबराल, मंगलेश डबराल सेतु समग्र, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ संख्या 32,

3. आदिवासी, मंगलेश डबराल, मंगलेश डबराल सेतु समग्र, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ संख्या 334

4 वसंत, मंगलेश डबराल, मंगलेश डबराल सेतु समग्र, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ संख्या 48

Corresponding Author

Dr. Ramayan Ram*

Assistant Professor (Hindi), Government Women Post Graduate College, Kandhla, Shamli